UNIVERSAL LIBRARY
OU_182544
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.6/M67S Accession No. G.H.1613

Author मिश्र, आनन्द

Title साधना । 1952.

This book should be returned on or before the date last marked below.

साधना

नीले अम्बर में सबसे —
पहले चमका जो तारा,
उसमें देखा था मैंने —
प्रियतम प्रतिबिंब तुम्हारा,
बन्दी हो जैसे चन्दा —
छोटे से उस तारे में,
कितना आलोक छिपा था—
मेरे उस अँधियारे में।

— आनन्द मिश्र

प्रथमावृत्ति–१०००] [मूल्य १।)

प्रकाशक—
वसन्त मिश्र, बी० ए०
बिन्दो-मन्दिर" प्रकाशन,
लश्कर, ग्वालियर।

सर्वाधिकार कविद्वारा सुरक्षित

प्रकाशन-तिथि
१४ दिसम्बर, १९५२

मुद्रक
प्रवासीलाल वर्मा, मालवीय
नागरिक प्रेस
लश्कर, म० भा०

प्राक्कथन

—•—

काव्य की साध्य और उद्देश्य सम्बन्धी मान्यताओं में प्राच्य एवं पाश्चात्य आचार्यों तथा विचारकों में इतना सूक्ष्म मतभेद पाया जाता है कि कविता-कला की कोई सार्वभौम सर्वसम्मत परिभाषा कर सकना बड़ा कठिन काम है। सारांश यह कि कविता क्या है, इसे अधिकांश लोग जानते हुए भी उसकी कोई सार्वदेशिक व्याख्या करने में अद्यावधि असक्षम से ही रहे हैं। "भिन्न रुचिहि लोक" का यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। तथापि अधिकतः उस रसात्मक व्यवस्थित वाक्य समूह को कविता कहते हैं जो उन्हें लोकोत्तर आनन्द के अनुभव में निमग्न कर दे। वस्तुतः यह एक बड़ी कला है, जो भावों तथा विचारों के दोहन से अभिव्यक्ति ग्रहण कर जन-मानस तथा रसिक-हृदय को एक चिर-नवीन प्रेरणा, स्फूर्ति और आनन्दातिरेक की दिशा में उन्मुख कर आलोड़ित कर देती है। कोमल कवि-कल्पना अनुभूति की गम्भीरता से चमक उठती है।

शब्द-चयन, सुष्ठु-योजना, कोमल-कान्त पदावली, अप्रतिभ ओजस्विता, अर्थ गांभीर्य, रसोद्रेक प्रवणता तथा अबाध व्यंजना चमत्कार काव्य की उपादेयता को घनीभूत करने में समान रूप से सहायक होते हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे। प्रकृति वर्णन, लोक-जीवन चित्रण और अन्तर्मुखी वृत्तियों को उद्बुद्ध करने की असीम शक्ति के द्वारा कवि अपना स्थान और स्थिर करने में समर्थ होता है सौभाग्य से 'साधना' के कवि श्री आनन्द मिश्र की लेखनी के मुख पर उपर्युक्त समस्त काव्योपयोगी विशेषताएँ स्वभावतः जाग्रत हो उठी हैं और उनके निर्बन्ध-पद्य रचना-सौंदर्य से अत्यन्त प्रभावित होकर ही मैं उनकी साधना को मूर्त्त रूप देने में अपनी अकिंचन सेवाओं के मोह को संवरण न कर सका।

यदि सहृदय जनों का समुचित सहयोग मिला और प्रस्तुत संग्रह का समीचीन मूल्यांकन किया जा सका, तो हिन्दी पाठकों को उनकी अनेक अन्य सुन्दर रचनाओं का भी अविलम्ब रसास्वादन कराना संभव होगा। आज के इस उदीयमान तरुण कवि की सुकोमल कली में मुझे तो एक महाकवि का अंकुर अन्तर्निहित प्रतीत होता है। कवि को सौन्दर्य, सुकुमारता तथा ऐश्वर्य के चित्रण में जहां असाधारण सफलता मिली है, वहां जन-जीवन के अभाव अभियोग, शोक, अश्रु और दैन्य ने भी अतिशय प्रभावित किया है। इस प्रकार साधना का कवि केवल वैभव और वसन्त का ही गायक न होकर पीड़ा और प्रगति से पूर्ण यथार्थ जीवन का भी एक सुघड़ शिल्पी बन गया है। आशा है हिन्दी-भाषी जनता इसका यथेष्ट समादर कर प्रकाशक का आयास सफल करेगी।

इत्यलम्

'कीरति के बिरवा कवि हैं—
इनका कबहूँ मुर झान न दीजै।

ग्वालियर
१४ दिसम्बर १९५२

दामोदरदास चतुर्वेदी, 'साहित्यरत्न'
हिन्दी प्रभाकर।

प्रारम्भिक निवेदन

दो-ढाई वर्ष के साहित्यिक जीवन में रचित ४००–५०० कविताओं और गीतियों का एक छोटा ,सा भाग, २८ कविताओं का संकलन पाठकों की सेवा में 'साधना' के रूप मे प्रस्तुत है। बहुत शीघ्रता में संग्रह प्रकाशित हुआ है, नितांत असंशोधित रूप में ही रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं। इनमें क्या है। मैं नहीं जानता। एक यथार्थवादी लेखक के नाते जो भाव आते हैं। उन्हें ईमानदारी से व्यक्त कर देता हूँ। मैं 'डिग्री विहीन' हूं, कविता पढ़ने का चाव बचपन से ही रहा है। थोड़ा बहुत पढ़ा है, पन्त जी और श्रद्धेयप्रसाद जी से मैं विशेष रूप से प्रभावित हूँ, इसे मैं निसंकोच मानता हूँ लेकिन साथ ही यह भी मानता हूँ कि किसी अच्छाई का अनुकरण बुरा नहीं है। प्रभाववादिता को मैं कविता का दोष नहीं मानता।

और अपनी रचनाओं के विषय में क्या लिखूँ , उनके द्वारा मुझे जो कुछ कहना है, मेरी कविताएं स्वयं कहेंगी। मैं एक व्यसनी लेखक हूं, बहुत लिखता हूं, या यों कहिए, बहुत लिख जाता हूं। मेरा प्रण है कि मैं आजीवन माँ भारती की सेवा करता रहूंगा, समाज के एक पथ, दर्शक के रूप में, एक ईमानदार कवि के रूप में मुझे पाठकों से केवल स्नेह और सहयोग की आवश्यकता है, मेरी रचनाएँ यदि उनका नाम, मात्र को भी मनोरंजन कर सकीं, तो मैं अपना प्रयास सफल समझूंगा, अन्तिम निवेदन है कि–

सांस अन्तिम तक कहीं कर्तव्य से मैं डिग न जाऊँ ,
इसलिए, स्वीकार कर लेना अकिंचन फूल मेरे।

अब एक कार्य और शेष है, 'आभार प्रदर्शन' ! शुभ-सम्मतियों के लिए, मैं श्रद्धेय श्री सत्यनारायणजी पांडेय तथा डा० शिवमंगलसिंह जी,

सुमन, का आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे हार्दिक प्रोत्साहन दिया है। मुख पृष्ठ के चित्र के लिए मैं अपने बड़े भाई श्री वसन्त मिश्र का आभारी हूँ, मैं अपने साहित्यिक सहयोगियों का भी आभारी हूँ जिन्होंने समय समय पर उत्साह-वर्धन और मार्ग-दर्शन किया, अन्त में स्नेह और सहयोग की अपेक्षा के साथ त्रुटियों के लिए क्षमा चाहता हुआ, मैं विदा होता हूं।

ग्वालियर
१२-११-५२

—आनन्द मिश्र

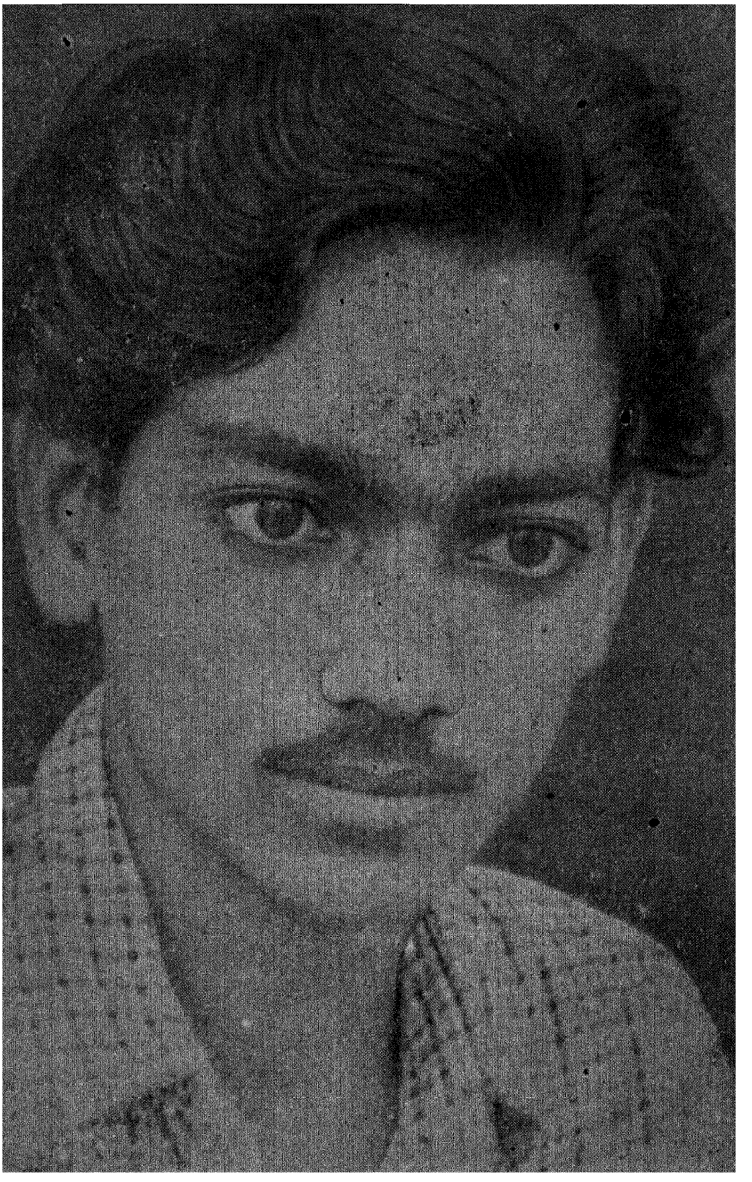

कवि

— प्रिय इन्दु को सस्नेह —

सूची

कविता	पृष्ठ संख्या
१. अभिवादन	६
२. समर्पण	१०
३. मैं	११
४. दुनिया की कहानी	१४
५. मानव	२२
६. दुनिया से	२४
७. नई चाँदनी	२६
८. प्रेम	२६
६. एक झलक	३१
१०. यौवन	३३
११. पनिहारी	३६
१२. जीवन-संगीत	३८
१३. पावस की बूँदें	४०
१४. धूप-छाँह	४२
१५. विश्ववंद्य महात्मा गांधी	४४
१६. जीवन,धन	४६
१७. जीवन, धन	४७
१८. स्मृति	४८
१६. लालसा	५१
२०. प्रतीक्षा	५३
२१. जीवन-प्रवाह	५६
२२. रहस्यमय	५८
२३. उन्मत्त क्षण	५६
२४. अपनी बात	६१
२५. ग्रामयुवति	६३
२६. वर्तमान से भविष्य की ओर	६४

साधना

अभिवादन

ओ मा, तुम,
वीणावादिनी, हंसवाहिनी,
अविरल स्नेह की नवल नागरी-सी,
चिर-प्रकाश की उज्ज्वल ऊषा—
सुषुप्ति की बीती विभावरी-सी,
मुखरित आनन की शोभा निरख–
जब, हृदय–कमल विकसित, होंगे
गुंजित कानन होंगे,
वन–उपवन प्रति-पल,
जिज्ञासा के नन्दन होंगे ,
उदय की वेला में —
अर्चना की
परागित अंजलि–
तब चरणों में अर्पित करने का—
क्षण भी होगा,
कितना सुखदाई !!!
देखो !
वह देखो !!
क्षितिज के उस पार,
प्राची के आँचल में,
जहाँ अवनि–अम्बर, दोनों मिलते,
निशा, अवसान के आँसू बहाकर—
ले रही अंतिम विदाई !!!

समर्पण

—०—

मैं तुम्हारे द्वार आया प्यार पाने के लिये,
जिन्दगी में आज पहली बार गाने के लिये,
सब किनारा चाहते हैं, किन्तु नूतन साध मेरी,
आज यह पहला चरण है- हार जाने के लिये,

आज पूजा के लिये पहला सुमन मैं साथ लाया,
अध-खिला-सा, शुष्क-सा है जो किसीको भी न भाया
है नहीं माधुर्य, देखें, झूम जाए, हँस पड़े तू-
धृष्टता किंचित, तुझे निर्भीक हो मैंने जगाया,

यह हृदय का पुष्प, चरणों में समर्पित आज तेरे,
साधना परिपूर्ण हो, वरदान दे, सहलूँ अँधेरे,
साँस अन्तिम तक, कहीं कर्तव्य से मैं डिग न जाऊँ-
इसलिये स्वीकार कर लेना अकिंचन फूल मेरे !

मैं

—०—

रोको मत, पीने दो मुझको,
मैं तो, बढ़-बढ़ कर पीता हूं,
क्या समझोगे मेरा साहस—
मैं तो मर-मर कर जीता हूं,

मैं अपनेपन का मतवाला—
सदा किया करता मनमानी,
मुझे चाहिए आग, नहीं—
इन आँखों का यह झूठा-पानी

पतझर कहकर मुझे डराते—
मैं तो खुद मधुमास अजर हूँ,
मौत-मौत, चिल्लाती दुनिया—
यहाँ स्वयं यमराज, अमर हूँ,

जब सारी दुनिया सोती है—
मैं मरघट में, नदी-किनारे
लाशों की दीवार बना कर,
नाचा करता नभ के तारे,

राका के सारे आकर्षण—
थक जाते मुझको बहलाते,
चाँद चिरौरी करता मेरी—
पावस-घन मधुधार बहाते,

मैं तो, तूफानों से खेला—
लहरों का शृंगार मुझे क्या,
स्वयं जीत हूं, स्वयं हार हूं—
जीत मुझे क्या, हार मुझे क्या?

मेरी मधुशाला मैं खुद हूं —
साकी भी मैं, मैं हूं प्याला,
मेरे यहां गरल बिकता है—
और कहीं जा ढूँढ़ो हाला,

सुखी नहीं हूं, दुखी नहीं हूँ—
मुझे प्यार शोलों से साथी,
मैं सिर ऊँचा कर चलता हूं-
स्वाभिमान ही मेरी थाती,

थकना, रुकना, दोनों मुश्किल-
मैं हरदम आगे बढ़ता हूं,
झंझा से, हिम से, आँधी से,
हर संकट से मैं लड़ता हूँ,

मेरी डगर वहीं मुड़ती है,
जहां कभी रोया हो कोई,
मैं हँसना हूं वहीं, जहां पर—
चिर-निद्रा में सोया कोई,

दुनिया पागल कहती मुझको,
मैं कहता, खुद, हूं दीवाना,
बुझी शमा पर अट्टहास कर-
मंडराता - मैं वह परवाना,

घायल को पागल कहने की,
रीति अनोखी है दुनियां की।
आग लगाकर तेल छिड़कना,
प्रीति निराली है दुनिया की।

मैं तो सब सहनेवाला हूँ —
आह नहीं निकलेगी मुख से,
चाहे जितना मुझे जलाओ—
कब घबराता हूं मैं दुख से,

चट्टानों से भी कठोर है
मेरी दुबली - पतली छाती—
मैं खाता प्रतिपल अंगारे -
ज्वाला मेरी प्यास बुझाती—

स्नेह चाहता है यदि कोई —
तो पहले मुझको ठुकराए,
आकर्षणवाले सौदागर —
अनगिनती मुझ पर मँडराए,

प्यार उसे करता हूँ मैं तो —
जिसके उर में घाव भरे हों,
सुमन वही भाता है मुझको.
जिसमें विषमय भाव हरे हों,

नाहक मुझे सताती दुनिया ,
जितना समझे, नहीं सरल हूँ,
व्यर्थ जायंगे विष के प्याले,
यहां स्वयं साक्षात गरल हूँ ।

—जनवरी १९५०

दुनिया की कहानी

मैं सुना रहा हूँ तुमको एक कहानी,
जो नई हमेशा, वैसे बहुत पुरानी।

(१)

वह दिन दुनिया का होगा बड़ा अनूठा,
जिस दिन धरती पर पहला अंकुर फूटा,
सम्पूर्ण सृष्टि में अन्धकार था छाया,
तब, नभ में कोई कई दीप था लाया,
पहले दुनिया थी, एक आग का गोला,
दहका करता था– हर रग-रग में शोला,
यह शैल नहीं थे, और नहीं थे निर्झर,
तब मनुज नहीं थे, और नहीं थे तरुवर,
थे विहग नहीं उड़ते स्वच्छन्द गगन में,
तब फूल नहीं खिलते थे भूम चमन में,
हर निमिष दहकते रहते थे अंगारे,
हर ओर अनल था– अपने पाँव-पसारे,
इस तरह नहीं था तब वसुधा पर जीवन,
इस तरह नहीं थे धूप-छांह के नर्तन,
नभ के तारों का यह शृंगार नहीं था,
रग-रग में साँसों का संचार नहीं था,
तब सजा हुआ ऐसा संसार नहीं था,
धरती पर कणभर को भी प्यार नहीं था,
लेकिन दुनिया का तो क्रम है परिवर्तन,
परिवर्तन ही तो है जीवन में जीवन,
वह कौन सृष्टि में जिसने अंकुर बोया,
शोलों को जिसने शीतलता से धोया,

थी खली किसे इस धरती की नीरवता,
पाषाणों में बन्दी भू की चेतनता,
जड़ को अवचेतन, अवचेतन को चेतन,
चेतन को मन, मन को दे शाश्वत जीवन,
किसने धरती की माँग भरी फूलों से,
किसने जीवन सागर बाँधा कूलों से,
उस महाशक्ति को है मेरा अभिनन्दन,
हैं शब्द नहीं – करपाते उसका पूजन,
भटका करता है मन पाने को दर्शन,
रज-रज को किसने दी अनमोल जवानी,
मैं सुना रहा हूं तुमको यही कहानी।
जो नई हमेशा – वैसे बहुत पुरानी।

(२)

अंकुर फूटा, पल्लवित हुआ, मुसकाया
नभ ने अगवानी की, जीवन बरसाया
इस तरह धरा पर अगणित अंकुर फूटे
नीरव पर कोलाहल बन जीवन टूटे
चहके विहंग, स्वर लेकर, नया, निराला
था अंधकार पर हावी सृजन उजाला।
इस तरह सृष्टि का तब निर्माण हुआ था
अदृश्य गर्भ से मनु का त्राण हुआ था
सम्पूर्ण शान्ति थी, दुःखी नहीं था कण-भर
धरती प्रसन्न थी, तब, प्रसन्न था अम्बर
मानव - मानव में कोई भेद नहीं था
जीवन - जीवन में कोई भेद नहीं था
थी, प्रेम और सहयोग भावना सब में
यह विश्व सुखी हो यही कामना सब में
लहलहा उठी थी धरती तब मस्ती में
अन्याय नहीं था जीवन की बस्ती में
कम था विवेक तो लेकिन द्वेष नहीं था
मानव का इतना कुत्सित वेश नहीं था,
लेकिन, मनुष्य तो शान्त नहीं रह सकता
अपनी भी तो वह वृद्धि नहीं सह सकता !

धीरे-धीरे यह 'अहं' भावना जागी
वह बना शत्रु, जो था अब तक अनुरागी
मानव ने चाहा-मानव पर ही शासन
बन गया लक्ष्य जीवन का बस सिंहासन
कुछ शक्तिवान बोले सत्ता है मेरी
धरती पर पहली बार बजी रणभेरी
भाई-भाई में वैमनस्य घुस आया
धरती चीखी, अम्बर ने नीर बहाया
ज्वालामुखियों की फटी अचानक छाती
मर्सिया बन गई थी अनमोल प्रभाती
फिर एक बार बरसे भू पर अंगारे
फिर एक बार घिर गए सघन अंधियारे
वैभव का मद ऐसा ही होता है क्या-
मरजाता है इतना आँखों का पानी।
मैं सुना रहा हूं तुमको यहीं कहानी,
जो नई हमेशा- वैसे बहुत पुरानी।

(३)

हर निमिष बीतता है बीते दिन, रातें,
कितने पतझर कितनी गोली बरसातें,
मानव, मानव से, देव न बनकर दानव,
कल्पना नहीं थी, वह हो बैठा संभव,
कुछ थे, दुनिया में मरकर भी जीते थे,
कुछ सुरा नहीं लोहू हँसकर पीते थे,
कुछ थे आहों में घुट-घुट कर जलते थे,
कुछ लाशों पर कहकहे लगा चलते थे,
अधिकांश वही थे, जो कि सतत जलते थे,
इसलिये कि वे कायर थे, जो जलते थे,
दो-चार इधर थे, और उधर था जन-जन,
कैसे मानूँ फिर भी होता था शासन,
मैं सोच रहा हूं तब मानव रोता था,
वे जाग रहे थे पर जन - जन सोता था,

सोनेवाले ही कब स्वतंत्र होते हैं,
यह अपना क्या युग का महत्व खोते हैं,
इस तरह जागने वालों की है दुनिया,
पछता लेते फिर भी करते नादानी।
मैं सुना रहा हूं तुमको यही कहानी,
जो नई हमेशा वैसे बहुत पुरानी।

(४)

बीतीं शताब्दियाँ, कल्प और युग बीते,
वैभव के दुलके घट, प्याले भी रीते,
ढह गए महल परिवर्तित हो खँडहर में,
तन गए महल नभ को छूते क्षण-भर में,
लेकिन विनाश की ओर बढ़ चली दुनिया,
भौतिक विलास की ओर बढ़ चली दुनिया
मानव से मानव का होता था शोषण,
इसलिए कि शोषण से मुश्किल है पोषण,
प्रासाद तने झोपड़ियों की छाती पर,
लोहू की सरिता बह निकली धरती पर,
थे स्वर्ण-हार, हीरों की गल-मालाएँ
दरबारों में अपमानित थीं बालाएँ,
बातों-बातों में चीर खींच लेते थे,
बेबस लोहू से तीर सींच लेते थे,
मदिरा में अपना भी अनुमान नहीं था,
माता-बहनों तक का सम्मान नहीं था,
"लेकिन दुनिया का तो क्रम है परिवर्तन,
परिवर्तन ही तो है जीवन में जीवन,"
मानव ने अपने अधिकारों को जाना,
हम सब समान हैं एक सत्य पहचाना,
तब कंस मरा, इसलिए कि अत्याचारी,
मिट गया दशानन, वह भी था अविचारी
हर ओर क्रांति ने बढ़ दुन्दुभी बजाई,
है नियम कि जीता करती है सच्चाई,
यह अटल सत्य है, सत्य नहीं मरता है,
यह तो रज-रज में मूर्तिमान रहता है,

कर्तव्य-परायणता से जो डरता है
संघर्ष नहीं करता है वह मरता है
है जीत उसी की जिसने मरना सीखा
वह हार गया है जिसने डरना सीखा
इस तरह कर्म का है प्राधान्य यहां पर-
मानव—तुम दुनिया में सब से लासानी!
मैं सुना रहा हूँ तुमको यही कहानी,
जो नई हमेशा, वैसे बहुत पुरानी।

(५)

यह समय नहीं रुकता, कैसा समझाना,
बढ़ गया और भी आगे जरा जमाना,
अब खुले आम मीना-बजार सजते थे
लज्जा पर पौरुष के वितान तनते थे
जयचन्द, मान, से युग कलंक जीवित थे
इसलिए विश्व के "वैभव" भी सीमित थे
झूठी सज-धज का मोह-जाल फैला था
मानव का अन्तःकरण अभी मैला था
खलिहानों में बैठे किसान रोते थे
सूखी बालें थीं, आंखों से धोते थे
हर ओर उदासी के बादल छाए थे
मानव को पशुता के अंकुर भाए थे
पार्थिव विलास पर ही जन-जन मरता था
वह अमृत सत्य, मन का विरोध करता था
इसलिए कि मन सच्चाई पर चलता है
तन, पशुता का मोही, प्रतिपल गलता है
जो सत्य नहीं है, केवल वह डरता है
मरता शरीर है, कर्म नहीं मरता है
जड़ता थी चेतनता का नाम नहीं था
मानव-मानव में अब भी साम्य नहीं था
कुछ जगे वीर कल्याण-भावना लेकर
संकीर्ण-वृत्ति से त्राण-कामना लेकर

राणा प्रताप और वीर शिवा सेनानी
संगठित हुई हुंकारों पर जन-वाणी
पट गई भूमि शोणित से तर लाशों से
चल पड़े प्रभंजन आवेशी सांसों से
तुलसी, कबीर, मीरा की पावन वाणी
कवि सूर-चन्द की वह रसना कल्याणी
जिसने जंजीर जग को जीना सिखलाया
जिसने मरुथल में जीवन स्रोत बहाया
जौहर की ज्वाला का हँस-हँस आलिंगन
असि की धारों पर चलता आया जीवन
इस तरह सैकड़ों बार बसी है दुनिया
इस तरह सैकड़ों बार लुटी है दुनिया
पर, जैसे-जैसे सृष्टि बढ़ी है आगे
वैसे-वैसे पशुता ने की मन-मानी
मैं सुना रहा हूँ तुमको यही कहानी
जो नई हमेशा, वैसे बहुत पुरानी।

(७)

इतनी दूरी, फिर वर्तमान आया है,
सब कहते हैं नूतन विहान लाया है
देखा लेकिन बिलकुल विपरीत यहां पर
जो पहले थी वैसी ही रीत यहां पर
तब भी उत्पीड़ित था जन-जन रोता था
अब भी उत्पीड़ित है जन-जन रोता है
इसलिए कि तबभी यह जन-जन सोता था
इसलिए कि अबभी यह जन-जन सोता है
सोने वालों के लिए नहीं है दुनिया
खोने वालों के लिए नहीं है दुनिया
जीवन सीमित है त्याग नहीं है सीमित
वैभव सीमित है प्यार नहीं है सीमित
इन महलों की ऊंची कलुषित दीवारें
सत्ता के मद की यह उन्नत मीनारें

इनके खंडहर भी शेष नहीं मिलते हैं
थोथे मद के अवशेष नहीं मिलते हैं
कवि की वाणी कहने में शर्माती है
उसकी आंखें बरसातें भर लाती हैं
दुनिया ने अब 'अणुबम' निर्माण किया है
छाती पर रखने को पाषाण दिया है
वैभव के बल पर पेट काटने वालो
नश्वर विलास को विजय मानने वालो
"इस दुनिया का क्रम सुनो, सदा परिवर्तन
परिवर्तन ही तो है जीवन में जीवन"
फिर एक बार मेरी दुनियां बदलेगी
दानवता की फिर से अर्थी निकलेगी
दस करोड़ एटम की भी क्या हस्ती
उससे महान मेरे मानव की मस्ती
दानवता के चोले से बाहर आओ
हर चीज यहाँ पल-भर के बाद पुरानी
मैं सुना रहा हूँ तुमको यही कहानी,
जो नई हमेशा वैसे बहुत पुरानी।

(८)

संहार नहीं निर्माण चाहिए अब तो
राक्षसी-वृत्ति से त्राण चाहिए अब तो
मानव-मानव में साम्य चाहिए अब तो,
मन का मन से तादात्म्य चाहिए अब तो
ये भूख, प्यास, कपड़ा, रोटी के लाले
ये फुटपाथें लाशों का ढेर सम्हाले,
दो रोटी में केवल लज्जा बिक जाती
माँ की ममता पैरों से कुचली जाती,
इस तरह नहीं सम्हला करती है दुनिया,
इस तरह नहीं बदला करती है दुनिया,
मेरा कलुषित संसार नहीं है एक,
मेरा वांछित व्यवहार नहीं है एक,
ईमानदार कण-कण होगा दुनिया का,
सच्चाई पहला व्रत होगा दुनिया का,

मानव-मानव में अब समानता होगी,
धरती-अम्बर में अब समानता होगी,
जितने भी ये ऊँचाई के संहारी,
मानव-पशु-कुण्ठित, बुद्धिहीन, अविचारी,
जो लिये हुए सम्पूर्ण, सृष्टि का ठेका
ये मिट जाएंगे, यही काल का लेखा,
गिरने वाले हैं अपनी ही खाई में,
सत्ता के थोथे मद वाले अभिमानी।
मैं सुना रहा था तुमको यही कहानी।
जो नई हमेशा, वैसे बहुत पुरानी।

मानव

मैं मानव हूँ, सरिता की, धारा सी है,मुझ में गतिमयता
मैं मानव हूँ, अजर-अमर, इतिहासों सी मेरी तन्मयता,
अन्तरिक्ष से भी कुछ ऊपर पहुँच चुकी मेरी मानवता
और सैकड़ों बार झुकी है मेरे चरणों पर दानवता
संसृति को मधु का अभाव है, पर मैं तो अब भी हूँ पीता
इतिहासों के पृष्ठ पलटते आये, लेकिन मैं तो जीता
मेरे मानस के अम्बर में निखिल विश्व-राका मँडराती
मैं संसृति का शाश्वत सम्बल,सृष्टि,सदा मुझपर इठलाती
सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, सितारे मेरे पथ में नयन बिछाते
मेरे स्वागत को अम्बर में सुरगण बन्दनवार सजाते
थका नहीं मैं, रुका नहीं मैं, मेरे चरण सदा बढ़ते हैं
मेरे मौन इशारों पर ही उन्नत शैल झुका करते हैं
जाने कितनी शमशीरों की जंग खा गई चढ़ी जवानी
सब युग-युग प्रयत्न कर हारे उतरा कब आंखों का पानी
डगर बनाता हूँ मैं जिस पर, चलती है दुनिया सारी
मैं जीता अपने वैभव पर देवों तक की दुनिया हारी
मेरे दृग खुलते ही देखो, चट्टानें भी पिघल रही हैं
मेरी श्वांसों मे ही जग में मलय-समीरण मचल रही है
मेरे अधर हँसे यह देखो मुखर सुमन खिलखिला उठे हैं
सीमाहीन विशाल गगन के सब तारे झिलमिला उठे हैं
आहत विश्व डूब उतराता, मेरी पलकों के पानी में
अरे! युगों तो बीत चुके हैं जग को मेरी महमानी में
किस की छाती रोक सके जो मेरी भृकुटी का जल-प्लावन
कह दूं मैं पतझर है देखें किसकी हस्ती लाए सावन
मेरे गीत स्वयं शाश्वत हैं अजर-अमर परिवर्तन से स्वर
मेरी हृदतंत्री पर बजती मादक लय, पर सदा अनश्वर

जग मेरे बल पर जीता है, मैं जग का सच्चा पथ-साथी
जग का जीवित स्वाभिमान मैं, सृष्टि अभय वर मुझ से पाती
जीने का अधिकार दिया करता हूँ मैं जर्जर जीवन को
आँसू से उर्वर करता हूँ मैं जग के सूखे मधुवन को
पीड़ा फूट हृदय में मेरे आ जाती बनकर अँधियारा
किन्तु चीर तम की छाती मैं लाता खींच अरुण उजियारा
गहरे अगम सिंधु के उर में मैंने जग का भाव टटोला
युग की बोझिल, स्वप्निल, तन्द्रिल पलकें जिनको मैंने खोला
निर्झरिणी मेरे इंगित पर गीत सुनाती कलकल, छलछल
मृदुल, विपुल छलनाएं गातीं, गीत अनोखे, मादक पलपल
और गगन जब गाता निशि में हो उन्मन झंझारों के स्वर
तथा वियोगिनि राका के अन्तर से बहतीं आहें सत्वर
उल्कापात धरा पर होता फोड़ गगन की चौड़ी छाती
मैं हाथों में भोर समेटे आता गाता विजय प्रभाती
होकर मौन, निरुय, जब अम्बर दर्द-भरे निश्वास बहाता
तब सहृदय मैं तुहिनकणों के पुष्पों पर विद्रुम बिखराता
मेरा अन्त नहीं होता है जग का अन्त भले हो जाय
मेरी आँखें सदा खुली हैं जग चाहे डरकर सो जाय
जब तक धरा गगन स्थित जग में मेरी धड़कन नहीं रुकेगी
अम्बर ही चाहे झुक जाए मेरी धरती नहीं झुकेगी ।

—जनवरी १६५१

दुनिया से

मैं तुम्हें तुम्हारी बात सुनाने आया हूँ,
मैं कुछ अपनी भी बात बताने आया हूँ।

(१)

तुम रोते हो, बहलाने गीत सुनाता हूँ,
तुम सोते हो मैं गाकर तुम्हें जगाता हूँ
पीड़ा से जब भारी हो जाती हैं पलकें
तुम धोते हो, मैं उनका नीर सुखाता हूँ
तुम भूल रहे हो यह कोई अज्ञात नहीं-
मैं इसीलिए गीतों में मरहम लाया हूँ।
मैं तुम्हें तुम्हारी बात सुनाने आया हूँ।
मैं कुछ अपनी भी बात बताने आया हूँ।

(२)

मैं, आँधी आने से पहले बतला दूँगा,
आसार दिखेंगे, वैसे ही मैं गा दूँगा,
तुम सावधान हो जाना, मैं पहले से हूँ-
उस थकी मौत पर भी मैं जीवन छा दूँगा।
जो तुम्हें मिटाने की हस्ती लेकर आए,
उस पतझर में भी आग लगाने आया हूँ।
मैं तुम्हें तुम्हारी बात सुनाने आया हूँ।
मैं कुछ अपनी भी बात बताने आया हूँ

(३)

मैं आहों को करना सन्मान सिखा दूँगा,
हर रजकण को निर्भय पाषाण बना दूँगा,
जिनकी छाती से इन्द्र-वज्र तक भी काँपे—
मैं हर जीवन को ऐसा त्राण बना दूँगा,

मरना कहकर मेरे अनुमान लजाओ मत,
मैं जीने के अनमोल बहाने लाया हूँ।

मैं तुम्हें तुम्हारी बात सुनाने आया हूँ।
मैं कुछ अपनी भी बात बताने आया हूँ।

(४)

मैं राह बना दूँगा, तुम उस पर चलना
मैं दीप जला दूँगा, तुम कंचन बनना

मेरी केवल अभिलाषा तुम से साथी
तुम पतझर को पी जाना, नन्दन बनना

मैं साथ रहूँगा, संकट में घबराना मत,
मैं स्वयं मिटूँगा तुम्हें बनाने आया हूँ।

मैं तुम्हें तुम्हारी बात सुनाने आया हूँ।
मैं कुछ अपनी भी बात बताने आया हूँ।

—जून १९५०

नई चांदनी

(एक नए युग के अवतरण के रूप में)

नीले, उर्मिल, अम्बर की छाती पर पग-धर,
उतरी राका, दिगदिगन्त, भू, नभ, ज्योतित कर

अन्तरिक्ष, शशि, तारक-दल, विस्मित प्रतिपल
यह रजत, शुभ्र, फैला किसका आँचल मंजुल

किन धवल रश्मियों का दुलका घट फेनिल
उन्मत्त वीचियों में कम्पन, मृदु कल-कल

विस्फार कुमुदिनी अवगुंठन खिसकाकर
झूमी, विहँसी, मदहोश चपल लहरों पर

अम्बुधि, मचला भरने शशि को आलिंगन
लघु लहर-लहर में छवि का मादक नर्तन

क्षणभर पहले जीवन में था घन - अंधकार
जड़ता व्यापित थी, पंक सनी, कटु, दुर्निवार

किसलय कांपे, झपटे आँधी के सज प्रहार
भीषण दानवता हँसी, मर्त्य पर हुआ वार

सहसा, जीवन को जीवन का मिल गया सार
ज्योत्स्ना हँसी, रे ! हार गया अब अंधकार

झूमी पुलकन, सुरभित दिगन्त, प्रमुदित प्रवाल
जड़ता ने पहनी चेतनता की अजर माल

सुधियों ने बन्दनवार सजाए भू पर
हँस उठा विश्व, अविराम, परस्पर सुन्दर

घुल गई कालिमा चन्दा के नत मुख से
कंचन बनकर, तप-तप कर अविरत दुख से

तृण की हरीतिमा, निर्भय हिल मुसकाई
नीरव में, कोलाहल ने वीणा बजाई

चांदी के शत-शत हंस तैरते नभ में
नूतन उमंग दिखलाई देती सब में

निर्झर ने गिरकर चट्टानों को फोड़ा
मर्त्यों ने बढ़, अमरों से नाता जोड़ा

वसुधा को लख कर, देवलोक ललचाया
पाषाणों को भू ने भगवान बनाया

कालिमा मिटी जीवन बढ़ आया आगे
चेतना जगी, जड़ता के अँकुर भागे

रज-रज विहँसा, कहकर मिट गया अंधेरा
जर्जर जीवन, लेंगे, निर्बाध बसेरा

अधखिले मुकुल, मुकुलित होंगे फूलेंगे
डाली पर भर-भर पैंग प्रमुद झूलेंगे

अब, नहीं रहा, संकीर्ण सुषुप्त धरातल
देखो नूतन निर्माण सृष्टि का उज्ज्वल

पंकिल-अतीत पर, वर्तमान, अप्रतिहत
ढह गया असत, सत मूर्तिमान, चिरजीवित

गर्वीले तम पर, हावी सृजन उजाला
अभिनन्दन को दौड़ा भविष्य मतवाला

पूजन को राका, थाल सजाकर लाई,
सम्पूर्ण चराचर ने अगवानी गाई,

जल उठे दीप भी रजत - थाल में झिलमिल,
हँस पड़ा उनींदा विश्व, झूमकर खिल-खिल,

मकरन्द जिसे हँसकहता रहा अभागा,
मीलित पंखुरियों का वह गुंजन जागा,

उन्मन कलियां खिल रहीं समोद लजाकर
नवयुग आया है बुझते दीप सजाकर।

—शरद पूर्णिमा १९५२

प्रेम

सुरभि-सने, सुमनों की, शुचि, सुषमा - सा सुन्दर,
मन्द, मधुर, महकी, मलयज-सा, मोहक, मनहर,
सरिता की लहाम चपलता-सा चंचल, वर,
पुलक प्रवालों की पुलकन - सा, पावन मृदुतर,
घिरी घटा के सघन जाल - सा फेनिल, कोमल,
जड़-चेतन में, अणु-अणु में व्यापित यह प्रतिपल,

प्राण-प्राण में पला अपरिमित यह आकर्षण,
रोम-रोम में बिंधा हुआ है यह मधु-वर्षण,
रज-रज में, ज्यों अंग-अंग में व्यंजित धड़कन,
अजर-अमर है इन सुधियों का शाश्वत नर्तन,
अप्रतिहत है, सांसों का अलसाया कंपन,
कलुषहीन, श्रद्धानुकूल, यह प्रतिपल नूतन,

व्योम, नखत, शशि में, ऊषा, दिनकर में,
एक छटा, निर्बाध समन्वित, कूलों में निर्झर में,
एक मधुरता, एक शिथिलता, वीणा और विहगों के स्वर में
एक चुभन, परिवर्तन, सिहरन, निशि-दिन के मर्मर में
सरस लताओं के आंचल में, अधनिमीलित गुंजन,
छूता है उर-वल्लरियों को सदा एक शीतल, स्पन्दन,

चातक की विह्वल वाणी में चिर- उद्वेलित प्यास,
छलक रहा विद्युत अधरों से एक उनींदा हास,
सरसी की छाती से लिपटे सरजिस के भुजपाश,
बीचि-बीचि से आलिंगित है मुकुलों की मृदुसाँस,
तृण-तृण में अभिनव हरीतिमा, मंजुल, विरल विकास,
सरस स्नेह से शेष न कोई यह रज रज के पास,

दीपक का शीतल वक्षःस्थल, लौ हिल-हिल कर गाती
शलभ टोलियाँ, झूम-झूम कर, चूम-चूम इतरातीं
घन - मालाएँ सुधा भरे घट, बार-बार भर लातीं,
सहम-सहम, वसुधा पर नभ से, तुहिन बूँद ढरकातीं
सावन की उन्मत्त नीलिमा, विद्युत, घन-कजरारे,
शीशमहल, झोंपड़ियों, सब में इसने पांव पसारे,

पायल के उन्मद स्वर से वह आई मादक रुनझुन,
किसलय-किसलय के कंपन में एक अनोखी थिरकन,
मधुर-मधुर मादक बरखी रे! बदली छन-छन निस्वन,
श्वास-श्वास से सुन सकते हो गहराई का अर्चन
अवलंबित, आधारित जिस पर कल्पों से यह जीवन,
प्रेम परिधि में नहीं बँधा है, नहीं अबोध, अकिंचन

इस प्रवाह से खेल रहे हैं निखिल सृष्टि के अंकुर
यह प्रवाह, संसृति के अथ से, सत्य और शिव, सुन्दर
अजय शक्ति, ध्रुव ब्रह्मलीन प्रल्हाद अनश्वर,
निर्विवाद है इसकी गति कल्पों से सत्वर
प्रलय कहाँ ? निर्माण सृष्टि का इसके बल पर
आभारी है, सदा रहेगा, इसका सकल चराचर।

नवम्बर, १९५१

एक झलक

वह एक झलक मैंने देखी,
सारी वसुधा का आकर्षण—
जिसमें अंकित,
भोली किरणों का, यौवन-धन—
जिससे शंकित,
जल की लहरें भी,
इस उपमा से हैं वंचित,
मलयज में भी नहीं, कि जो—
उसमें पुलकन,
इस रूप-राशि के स्रोत
चांद का भी अभाव था वह यौवन
कितने आकुल मन, रौंद चुकी—
उन अधरों की मादक सिहरन
वे नीले-नीले,
नील कमल से नयन,
किन्तु कुछ लाल-लाल -
जैसे नभ में छाई संध्या की लाली
वे थके, उनींदे पलक,
लदीं जिन पर—
लहराती अलक,
कि जैसे,
साकी के झिलमिल आंचल में,
छुपी हुई मधुमय गागर की
मधुर छलक—
वे सजल गोल दो नयन—
कि ज्यों,

दो प्यालों में मदिरा ढाली,
आरंजित सुघर कपोल
कि जिनको छूकर ही--
लहराता मलयज आतंकित,
'हाय' न लग जाए बैरी की,
इसीलिए श्यामल अलकें,
मुख पर आच्छादित,
कोयल से मीठा स्वर था उसकी पायल में.
पुष्पों से बढ़कर सुगन्ध उसके
आँचल में—
तुहिन-बूँद से भी कोमल वह गात,
बिछ रहे थे, पथ में गिर-गिर कर
पीले पात,
सोचते थे—कोमल चरणों में—
चुभ जाने की—
है कांटों की जात,
मैं वार चुका उन आंखों पर
शत-शत सागर
सारी संसृति का चिर वैभव
कर डाला उन पर न्यौछावर ;
पर !
आज सोचता हूँ, पागल !
वह बेसुध यौवन
क्षण भर का —
मिट्टी को एक धरोहर है,
उसको फिर मिट्टी में मिलना,
एक बुलबुले-सा उठना,
उठकर गिरना,
गिरकर मिटना ।

दिसम्बर १९५१

यौवन

—०—

यह असीम है, रज-रज में कण-कण में प्रतिपल विद्यमान है,
जहां नहीं है, वहीं शिथिलता, हर धड़कन में मूर्तिमान है,
दुनिया ने माना है यह तो, जीवन एक चिरन्तन धारा,
जीवन को यौवन का सम्बल, यौवन से जीवन भी हारा,
इतिहासों के पृष्ठ गवाही देंगे इसके वैभव की
दुनिया की हर वस्तु गवाही देदेगी इसके वैभव की
वे मुनिराज, जिन्होंने जीते, जीवन के सारे कटुबन्धन
जिनके त्याग और तप से डर-डोला विधि तक का सिंहासन
एक मेनका के इंगित पर हार गई तप की भी हस्ती
विश्वामित्र झुके चरणों में यह इसके वैभव की मस्ती
आदि पुरुष मनु में यौवन था अब तक कौन मिटा पाया है
इसने अपनी रेखाओं में, शाश्वत शब्द लिखा पाया है,
फूलों के सौरभ में इसकी साँस तुम्हें दिखलाई देगी
चातक की वाणी में इसकी प्यास तुम्हें दिखलाई देगी
रोज कुहकती, गाती, कोयल, उन्मादित वह अमराई में
रोज शलभ जीवन-पाते हैं दीप-शिखा की परछाई में
इसका ही उन्माद लिए सरिता की धारा बहती कल-कल
कितना रूप और मादकता छलकाते हैं निर्झर छलछल
कितनी मस्ती है देखो तो इसकी धारा के पानी में
मरकत और विद्रुम के गजरे, बहते किसकी अगवानी में
इधर प्रतीक्षित देखो इसका सार, उदधि की शांत जवानी
उधर लहरतो, लहर-लहर में मिटने की सुकुमार कहानी

वह भी यह जिसके अधरों पर रखे गए हैं अधर सुहाने
वह भी यह जिसने रक्खे हैं अधरों पर चुम्बन बरसाने
चातक की चिर प्यास, पपीहे का पीपी रटना बस - खाना
श्याम घटा का हास, स्वाति के बूँद दिखाना किंतु छिपाना
रात हुई देखो चंदा ने राका के गल - बहियां डालीं,
ताराओं की कुसुम सेज पर दोनों ने मस्ती बहलालीं,
राका ना कहती जाती है, अधरों को भींचे, मुसकाए,
किन्तु रश्मि-डोरी पक्की है बार - बार कुचभार लजाए।
कलिका के सुकुमार उरोजों पर सौरभ कंचुकी कसी है
मधुपों की टोलियाँ, खुमारी में झूमी, भुजपाश फँसी है
भरी रात में मीलित पंखुरियों में देखो सोया गुंजन
भुला रहे पीड़ाएँ अपनी, मधु की सीमा में घुल प्रतिक्षण
नीले, उर्मिल, झागदार अम्बर में भी मद-भरी जवानी
स्वच्छ फेन बिखरा देती है उसकी मादकता लासानी
यह उसके भावों का मन्थन, जो गल-गल कर जमा हुआ है
इतना यौवन लिये हुए है तब तो ऊपर थमा हुआ है
प्राणों में नस-नस में विद्युत, चम-चमकर चमका करती है
सावन में भादों में हरदम, व्योम परी छमका करती है
अलसाई चितवन से राका, रोज सुधा की धार बहाती
रोज रातभर संचित करती, रोज सवेरे उसे लुटाती
कितना है अज्ञान जमाना, पूछ रहा है इसकी हस्ती
पानीपत में देख चुके हो इसके अरमानों की मस्ती
हल्दीघाटी की रज-रज से पूछो जाकर इसका साहस
दृढ़ दुर्गों की दीवारों से पूछो जाकर इसका साहस
हर लोहू की बूँद जवानी के आंचल से झाँक रही थी
हर शव की सिसकार आँधियों की गतिमयता आँक रही थी
भरी जवानी में शमशीरें चलती थीं शोणित की प्यासी
भरी जवानी में लोथों से पटी रही थी सारी झांसी

वह चित्तौड़ दुर्ग की ज्वाला लपटों ने चूमा था अम्बर
वह अपूर्व बलिदान हुआ था इसकी हुंकारों के बल पर
यह वह ज्योति, जगाई जिसने हर जीवन में नई चेतना
यह वह लेप, बुझाई जिसने हर जीवन की व्यथा, वेदना
यह वह दीप प्रभंजन हारा दिए चुनोती जलता आया
यह वह गीत जिसे दुनिया ने बार-बार फिर-फिर दोहराया
निखिल सृष्टि में यदि यौवन का नाम मात्र भी लेश न होता
यौवन के जीवित परिधानों से यदि लिपटा वेश न होता
तारे टूट-टूट गिर पड़ते धरा न होती, प्यार न होता
विहग न उड़ते, जीव न होते, जड़-चेतन अभिसार न होता
दुनिया के ज्ञानी कर्मठ जन, यौवन को अल्हड़ कहते हैं
इस नैया के पाल पवन के भी प्रतिकूल अलग बहते हैं
व्योम, सूर्य, शशि, नक्षत, धाराओ किसमें नहीं जवानी छाई
लहर, कूल, सागर, सरसिज में किसको नहीं जवानी भाई
यह तो अप्रतिहत प्रवाह है, आदि अन्त का संगम धीमा
नियति-नटी चलती रहती है पर यौवन उसकी भी सीमा
भरी जवानी में तृण भी तो, है आंधी से होड़ लगाता
कितना जीर्ण कलेवर इसका फिर भी झंझा से टकराता
इसी तरह यौवन के बल पर यह दुनिया चलती जाएगी
इसी तरह संस्कृति पर हावी यह मशाल जलती जाएगी
इसी तरह पढ़ ली जाएगी नयनों से नयनों की भाषा
इसी तरह समझी जाएगी, यौवन से जीवन परिभाषा

—मार्च १९५०

पनिहारी

नीले, पीले, लाल-गुलाबी, सतरंगे अम्बर के नीचे,
अरुणारे, रतनारे, गीले अधरों को दांतों से भींचे,

यौवन की विकसित सुषमा का भार और फिर सिर पर गागर
सावन की मेघावलियों को लजा रहे थे कुन्तल छा कर

नयनों में बन्दी नीला आकाश और पलकों में हाला
मसृण कपोलों पर ऊषा थी, होठों में बिजली की माला

बिछे सितोने सुमन पन्थ पर, बहती थी बयार मनहारी
गागर की छलकन से गीले आँचल पर अलका तक वारी

निर्झर की निस्सीम धार से धुले हुए पाषाणों के से—
श्वेत, रुई से कोमल पग वे, देख रहे थे हंस ठगे से,

लहरों की सिकुड़न-सी चंचल पगडंडी थी टेढ़ी-मेढ़ी,
चरणों में चुभ-चुभ जाते थे फूल उठाकर थोड़ी एड़ी

चलती थी अलमस्त शराबी सी डगमग डगमग पनिहारी,
तीन लोक, चौदह भुवनों की सुषमा, एक झलक पर वारी

चन्द्रातप की स्निग्ध ज्योति से चकाचौंध, दृग ठहर न पाते,
और हृदय भी मान न पाता, एक निमिष को नयन हटाते,

खिले पाटलों की सौरभ सी सनकर पास चली आती थी,
सुधि-समीर, वह बहकर मेरे नीरव प्राण मले जाती थी,

रूप-सुधा, पीकर चकोर दृग, झूम गए, उन्मद अनजाने,
स्मृति-पट पर नयन तूलिका से आई वह चित्र बनाने,

सुन्दरता देखी है मैंने फूलों की मुकुलित मधुबन की,
और छटा अलसाई सुन्दर, विद्युत की कजरारे घन की,

किन्तु रूप का ऐसा संग्रह, सुन्दरता का ऐसा वैभव,
पहली बार निहारा मैंने, कितना जीवित, कितना अभिनव
विस्मय है कोई कहता है, वह प्रतिमा मिटने वाली है,
अंधकार घिरने से पहले आती है यह वह लाली है,
सुन्दरता बूंदों की क्रीड़ा, नश्वर है यह धुल जाएगी,
काल - चक्र के निठुर ताप में, रूप माधुरी घुल जाएगी,
सोच रहा हूँ इस संसृति का यह निर्माता कितना निष्ठुर,
फूल खिलाकर यह वसन्त को बना रहा पल भर में पतझर,
अंचल उगलता कभी गगन है, कभी झूम जाते गीले घन,
विस्मय से मैंने पूछा था, धीरे से लेकिन बोला मन,
"धूप-छांह, सुख-दुख, विह्वलता आशा और निराशा के क्षण,
क्षणभंगुर हैं, सब नश्वर है, परिवर्तन ही तो है जीवन।"

—अप्रैल १९५२

जीवन संगीत

—०—

जीवन एक कहानी, जिसको पढ़ता अपनाता जग सारा,
सरिता का आलिंगन पाने , सरिता में खोजाती धारा,
श्याम रात के ही आँचल में दिन पाता विश्राम,
पंख कटे प्राणी भी उड़ते अम्बर में अविराम,
इन विचित्रताओं के बल ही जीवन हुआ महान,
कौन, कहाँ, कैसे मिट जाए, इसका किसको ज्ञान;

क्षणभंगुर जीवन की थाती, पानी पर लहरों का कंपन,
कई कल्प से सुखदाई है, एक निमिष का लघु स्पन्दन,
फूल हँसा डाली पर, कोई गया हृदय को चीर,
धोती देखी अश्रु - कणों से मैंने व्याकुल भीर,
वे, जो पुजते रहे धरा पर उनके कहाँ निशान।
एक प्रभंजन पोछा करता दीपक के अभिमान।

पल-पल पीड़ा पास तभी तो गति को इतना मान,
एक कसक प्रतिक्षण यौवन में तब तो इतनी जान,
तारे क्यों खोजाते नभ में, राका - शशि का प्यार;
वीचि सदा जीता करती है लघुकण जाते हार।
युग-युग का विषाद धुलता है क्षण भर में अन जान।
स्वयं मिटाते हो अपने को ठहरो तुम नादान।

मैंने देखा शलभ जला था ज्योति शिखा पर झूम,
ऐसा भी है प्यार यहाँ जो अंगारे ले चूम,
तुहिन-बिन्दु रज में मिल जाते उनका क्या है दोष,
जीवन की संध्या छा जाती, लेकर अपना रोष,
इस क्रम में यदि जीवन है तो जीवन भी क्रम जान,
मदिरा मत पी पागल पहले अनुभव कर विषपान।

विधि तो दूर रहा करता है कब धोता है घाव,
अपने तक ही सीमित जानो अपने घायल भाव,
ऊषा की चंचल मुसकानें उगला करतीं आग,
पतझर से पहले कहता हूँ माली अब तो जाग,
जीवन-मृत्यु, उभय जीवन हैं, इसका यही प्रमाण,
जीवन को जीवित करता है मर मिटने का गान।

—मई १९५२

पावस की बूँदें

—०—

मेघों की छलनी से छन-छन,
ढुल रहे, शुभ्र, शीतल, जल-कन,
कितना प्रमाद, कितनी सिहरन,
इन में भी है, मुझ - सा जीवन,

गीला करते, अवनी, नभ-तल,
कँपते प्रवाल, अभिनव कोंपल,
भू पर रज-रज हरिताभ सजल,
अनगिनती बूंदें, तरल, चपल,

धरती का अमिट. अपरिमित धन,
गिरते ढेरों, मृदु मुक्ता - कण,
अगवानी के यह घन-गर्जन,
कितनी सुधियां मद, स्पन्दन,

बूंदों से ही बनता सागर,
बूँदों से ही निर्मित गागर,
लघुता से ही, महानता, वर,
सागर है, बूंदों का अन्तर,

इनसे मेरी वसुधा उर्वर,
इनसे अम्बर, सतरंग सुन्दर,
मुकुलित मधुबन इनको पाकर,
जीवन - जीवन इनसे पलकर,

नश्वर कब, ये, अमर, सनातन,
गंगा की धारा सम पावन,
नहीं भेद, सब को समान बन,
बाँटा करती, प्रतिपल जीवन,

बरसो ; बरसो बनकर चेतन,
धो डालो सब कलुष, अचेतन,
सृष्टि, बने अलका, शुचि जीवन,
स्वार्थ रहित हो मानव का मन,

जनजन का उन्नत परिवर्धन,
भर जाए फूलों से मधुबन,
सत्य प्रेम से पूरित कण-कण,
स्वीकारो मेरा अभिवादन ।

—सितम्बर १९५०

धूप-छाँह

—※—

(१)

धूप-छांह के सम जीवन में सुख-दुख का होता है नर्तन,
आशा और निराशा आंख-मिचौनी खेला करतीं प्रतिक्षण,
दोनों ही जीवन में परिवर्तन के अभिनय, विरह-मिलन,
दोनों ही जीवन वीणा की मादक लय हैं, प्रलय-सृजन,
सुख-दुख की धाराओं के परिवर्धन का जीवन है संगम,
भावों और अभावों की, सरिताओं का, जीवन है उद्गम ।

(२)

जीवन के दो पक्ष दुख-सुख, ज्यों वासर के सांझ सकारे,
दोनों नश्वर और चिरन्तन, ज्यों अम्बर के सजे सितारे,
दुख का सुख से, सुख का दुख से, होता रहता है व्यापार,
मुरझा जाता एक निमिष में फूलों का मुखरित संसार,
तुहिन कणों से लदे सुमन भूला करते खोले अवगुंठन,
कलिका के शशि मुख से हटते, घूँघट, पखुरियोंके ज्यों घन

[३)

अंधकार को चीर भोर मुसकाती है स्वच्छंद गगन में,
एक नया कम्पन भर जाता, बसुधा के नीरव आंगन में,
एक स्वप्न सा मुसकाता है जीवन मधुबन का मधुमास,
एक दमक दामिनि की नभ में फूलों के अधरों का हास,
हो जाती निष्प्राण, झपकते पलक, मधुर को मधु-गुंजार,
मेघावलियों से, उमड़ा करते नयनों के पावार ।

(४)

ऊषा की मंजुल लाली पर झरते हैं भीषण अंगार,
शत स्फुलिंग की छाया में पलता रहता मेरा संसार,
जीवन की श्वासों के सम ही बीत रहा है एक-एक पल,
धरा-गगन के बीच धार गंगा की भी, हैं सूखे मरुथल,
प्राणों को पुतली में रोके चातक के नयनां सी विव्हल,
घूमा करती नक्षत्रों-सी, एक धुरी पर धरती प्रतिपल।

(५)

निश्चित क्रम-सी बदला करती धरती की सुषमा दिन रात,
अम्बर की छाती चीरा करते हैं दारुण-उल्कापात,
शीशमहल खंडहर हो जाते, खंडहर बनते शीशमहल,
परिवर्तित होती रहती है हर क्षण जग की चहल-पहल,
'धूप-छांह सुख-दुख, विव्हलता आशा और निराशा के क्षण
क्षणभंगुर हैं सब नश्वर हैं परिवर्तन ही तो है जीवन।'

(६)

सरिता को सागर लहरों की बाहों से देता आमन्त्रण,
बीच-बीच में लहरा जाता है सुधियों का सोया कंपन,
किन्तु एक लघु श्वास मचल देता सरिता की जागी साध,
तन बूँदों के आंसू बहते, रोया करते हैं उन्माद,
अड़ी हुई है अचल हिमाचल सी परिवर्तन की चट्टान,
विस्मय से देखा करता हूं पानी पर तिरते पाषाण।

(७)

यह अनुमान नहीं है पल-भर बाद यहां पर क्या हो जाए,
कौन जगे अँगड़ाई लेकर, कौन यहां डर कर सो जाए,
सत्य, प्रेम, सेवा, श्रम का व्रत, ही जीवन के शाश्वत धन है
न्याय और पर पीड़ा अनुभव ही विकास की ओर चरण है
जीवन को आदर्श बनाओ सत्य, न्याय से जीना सीखो,
बहुत पी चुके हाला, अब तो बढ़ो, हलाहल पीना सीखो।

—नवम्बर १९५२

विश्व-वंद्य महात्मा गांधी

वह मानव भगवान बन गया !

(१)

दुनिया में लाखों जीते हैं, जीते हैं जीकर मर जाते,
नाम नहीं रह जाता बाकी जीवन को पहचान न पाते
पर वह ऐसा जिया कि जिसका नाम नहीं हम बिसरा पाते,
जगत पूजता है क्यों उसको उसकी सच्चाई के नाते,
दुनिया अथ-इति के चक्कर में वह दोनों को जीत गया है
जीवन के अम्बार लगाये वह कोई नवनीत गया है,
आदि-अन्त दोनों की सीमा, पर वह तो दोनों से ऊपर,
वह असीमता का नायक था स्वर्ग बसाया उसने भू पर,
उसे कौन वरदान दे सके, जो कि स्वयं वरदान बन गया।

वह मानव भगवान बन गया !

(२)

युग परिवर्तन के पृष्ठों पर उसने लिख दी नई कहानी,
वह सच्चाई की मंजिल था उसकी केवल यही निशानी,
झूठ नहीं है मानवता का उसने ले रक्खा था ठेका,
तलवारों की धारों तक ने उसके पग पर मस्तक टेका,
इतिहासों के शीश झुक गए उसके आदर्शों के आगे,
एक अहिंसावादी जीता अजर-अमर हैं कच्चे धागे,
सृष्टि झुकी जिसके चरणों पर वह थी अस्थिर पंजर काया,
उसके दृढ़ विश्वासों का सत वसुधा से अम्बर तक छाया,
आज सृष्टि का हर कण देखो उसकी चिर पहचान बन गया

वह मानव का भगवान बन गया !

उसका सत्य समय का सुस्थिर, वह कर्तव्यनिष्ठ प्राणी था,
चट्टानों सा दृढ़-प्रतिज्ञ, इस युग की शक्तिमान वाणी था,
वह विनाश के व्यूह चक्र में खड़ा रहा थिर छाती ताने,
गीता के उपदेश अस्त्र थे रण-भेरी चरखे की ताने,
दुनिया समझ न पाई उसको करता है अपनी मनमानी,
ढोंग किया करता है जग में अपनेपन का यह अभिमानी,
विश्व जिसे बापू कहता है भारत का अनमोल सहारा,
लाज न आये कैसे हमको, तम लेकर खोया उजियारा,
जग का प्राण जगत से रूठा, अलका का मेहमान बनाया,

वह मानव का भगवान बन गया !

विश्ववंद्य, पैगम्बर युग के तेरी गरिमा चिर महान है,
यहाँ, वहाँ तू कहाँ नहीं है, हर धड़कन में मूर्तिमान है,
दो शब्दों में कैसे तेरी महिमा का वर्णन कर पाऊँ,
दो छन्दों में कैसे तेरा विस्तृत ज्ञानकोष कह पाऊँ,
रवि-शशि दोनों नियमित आते पर उनका पौरुष भी धीमा,
मैं तो यह भी कह देता हूँ, बापू तुम थे तप की सीमा,
ऐसी जिसको ठाम साधना, वह तो ध्रुव-तारे सा शाश्वत,
संचय तेरा भोग रहे हैं भारतवासी, हे ! शरणागत,
तेरा हर उपदेश अँधेरी दुनिया का, दिनमान बन गया,

वह मानव का भगवान बन गया !

—अक्टूबर १९५०

जीवन-धन

कितना व्यापक है जीवन-धन।

(१)

सुमनों में शीतल सुरभि सांस,
कलियों में मुखरित मधुर हास
अलि के अधरों में अजर प्यास,
नीले नयनों सा नील गगन,
कितना व्यापक है जीवन - धन ।

(२)

'पीपी' के सुमधुर प्रणय-बोल,
अवगुंठित स्वर, माधुरी घोल,
बिखरे कुन्तल से सघन जाल,
अम्बर के श्याम, सजीले घन।
कितना व्यापक है जीवन धन।

(३)

लहरों - सा मादक - स्पन्दन,
खुल-खुल जाता सरसिज उन्मन,
अधरों-सी नभ की प्रथम किरण,
उस विरल रूप की छवि कण-कण,
कितना व्यापक है जीवन धन।

(४)

मैं रज - रज में करता दर्शन,
धड़कन-धड़कन में चिर-चिन्तन,
अणु-अणु में उसका ही पूजन,
निर्मल जल सा, सुन्दर, पावन,
कितना व्यापक है जीवन - धन।

जीवन-धन

कितना निष्ठुर है जीवन धन।

(१)

दिख-दिख जाता है बार-बार,
छुप-छुप जाता है बार-बार,
मलयज सी सुधियाँ छेड़-छेड़,
खेला करता है वह प्रतिक्षण।
कितना निष्ठुर है जीवन-धन।

(२)

तारों में करता कभी बात
सपनों से लाता सजा रात,
पलकों में बन आता प्रभात,
खिलता उर-सरसिज पा सिहरन।
कितना निष्ठुर है जीवन-धन।

(३)

नभ की गंगा का बन प्रवाह,
मेरी धरती को सौंप आह,
ओझल ज्यों पल में धूप-छांह
हो जाता है, "मेरा-जीवन",
कितना निष्ठुर है जीवन-धन।

(४)

गीले गीतों पर लुटा प्यार,
गागर में सागर सा उभार,
थरथरा गया वह धार-धार,
कैसी विचित्र मादक कसकन,
कितना निष्ठुर है जीवन-धन।

—जून १९५१

स्मृति

मैं भूल नहीं पाऊँगा ।

(१)

गीली पलकों में होकर,
आंसू बन-बन कर आना,
उन्माद जगा पल भर को-
फूलों में फिर मुसकाना,
मैं भूल नहीं पाऊँगा ।

(२)

दीपक को स्नेह दिखा कर,
'लौ' के अनुमान जगाना,
जलने से पहले लेकिन;
आँधी बनकर बह आना,
मैं भूल नहीं पाऊँगा ।

(३)

सावन की घन अँधियारी
अलसाई सी रातों को;
तारों की पांत सजाए,
छुप-छुप होती घातों का।
मैं भूल नहीं पाऊँगा।

(४)

प्राणों में सांसें बनकर,
सांसों में बनकर कम्पन,
गीतों पर भाव लुटाए—
तेरा मादक मधु-वर्षण,
मैं भूल नहीं पाऊँगा।

(५)

पर्याप्त मुझे जीवन-भर,
इतना उन्माद दिया है,
साकार नहीं आए, पर,
तेरा हर बार बहाना ।
मैं भूल नहीं पाऊँगा।

(६)

निष्ठुर पाषाण अगर तुम
तो मैं इतराया निर्झर,
कितने कठोर हो, देखूँ-
अपने अनुमान बचाना
मैं तुमको पिघलाऊँगा ।

(७)

कल्पों से प्राण प्रतीक्षित-
पर दीप नहीं जलता है,
तुम रोक नहीं सकते हो
लेकिन इसका जल-जाना,
आगे बढ़ जल जाऊँगा ।

(८)

जीवन जितना छोटा है,
उतना ही व्यापक जलना,
कर्तव्य शलभ का है यह,
जल-जल कर क्षय हो जाना
मैं शोलों में गाऊँगा ।

(९)

परिणाम नहीं सोचा है,
इसके आगे क्या होगा,
तेरा किरणें बिखराना,
मेरा हँस कर गल जाना ।
तुझमें गल मिल जाऊँगा ।

(१०)

अनुमान यही है मेरा,
इति होती तब अथ आता,
यह प्रीत नहीं है लेकिन,
चलते ही घबरा जाना,
इति से आगे जाऊँगा।

(११)

तुम साथ नहीं तो क्या है
स्मृति, है मेरी हमजोली,
धीरज, मेरा पथ-दर्शक,
आगे चल कर मिल जाना,
मत समझो घबराऊँगा।
मैं भूल नहीं पाऊँगा।

—दिसम्बर १९५१

लालसा

—०—

जगा रही है किसकी स्मृति, विस्मृत सोया प्यार,
युग-युग के संचित संयम को, आज गया मैं हार,
सुधियों के गजरे बिखराकर, आहों का उपहार,
दे जाती है रात मुझे, जब सो जाता संसार,
और देखता रहता अपलक, मैं रजनी के छाले,
जम जात है नीले नभ में, हिम से, बादल काले,
महाशून्य पर छा जाता है, नीरव, घोर, कुहार,
तब होता है कुमुद खिलाकर, प्राणों से व्यापार,
मानस की सुनसान गली में, उच्छ्वासों का मेला,
सजग वेदना की अठखेली, मेरा प्राण अकेला,
सुलझाता हूं जीवन के क्षण, किन्तु उलझते जाते,
करुणा तक रोने लगती है, विषम भाव अकुलाते,
आज कामनाओं का मधुवन, सूना है फूलों से,
डुबा गया है कोई तरनी, आलिंगित कूलों से,
एक दिवस मेरी कुटिया में तुम धीरे से आए,
मेरे कवि ने प्रथम बार तब गीत मिलन के गाए,
और विलग होने की मन को तनिक नहीं थी आशा,
वे सोने के दिन थे मेरे जीवन की परिभाषा,
आज मुझे घेरे बैठे हैं अँधियारों के ढेर,
हो न कहीं अपमान प्यार का, मत करना अब देर,

तुम्हें शपथ गलते बादल की, एक बार प्रिय आना,
जीवन के संक्रांति-काल को लोरी गा दुलराना,
खो जाऊँ मैं उस अनन्त में पावन हो अभिसार,
यह दीपक जल उठे चिरन्तन, इतनी है मनुहार,
जन्म जन्म तक बसे रहोगे, धड़कन बने चितेरे,
एक यही लालसा शेष है, प्रतिक्षण जीवन घेरे।

—अगस्त १९५१

प्रतीक्षा

—०—

कभी अचानक आजाएँगे पिया, इसलिए—
रात-रात भर दीप जलाया करता हूँ मैं।

(१)

दीप जलाया करती है रजनी अम्बर में,
शायद उसके भी प्रियतम आनेवाले हैं,
लजा रही नव-वधू श्याम आँचल में कोई-
घन सुहाग की लाली बरसाने वाले हैं,
आशा की धूनी में सुलगा करता है मन,
धरती की यह नीरवता खलने लगती है,
और सांस का थका बटोही, सूनेपन से—
घबराता है, तब आहें गलने लगती हैं,
तभी, फूट पड़ते हैं स्मृति के सोए निर्झर,
गीत आप बन जाते, गाया करता हूँ मैं।
कभी अचानक आजाएँगे पिया इसलिए-
रात-रात भर दीप जलाया करता हूँ मैं।

(२)

लौट न जाए पिया अँधेरी रात देखकर,
यह डर भी तो मुझे सदा खाया करता है.
व्यर्थ न हो जाएँ धीरज पथरी आंखों के-
भावों में यह ज्वार सदा आया करता है,
आँखे अपलक, देखा करती हैं अनन्त को,
कितने युग कितनी बरसातें बीत चुकी हैं।

(तिरेपन)

कितनी बार चांदनी ने अम्बर धोया है,
कितनी सुधि की गीली रातें रीत चुकी हैं,
दोष न लग जाए दीपक बुझने का मुझ को
इसीलिए उच्छ्वास गलाया करता हूँ मैं,
कभी अचानक आजाएंगे पिया इसलिए-
रात-रात भर दीप जलाया करता हूँ मैं।

(३)

कितनी बार बुझे दीपक नभ की रजनी के,
यह दीपक लेकिन धरती पर जला किया है,
कितनी बार थके राही, अम्बर के तारे—
प्रणय-पन्थ पर किन्तु बटोही चला किया है
कितनी बार प्रभंजन ने बह-बह ललकारा,
बुझी नहीं, अक्षय जलती आई यह बाती,
युगों-युगों तक चीर प्रलय का निष्ठुर सीना
यह नैया अविरत बहती आई इतराती,
किन्तु तरी का माझी उससे रूठ गया है,
इसलिए हरबार लजाया करता हूँ मैं।
कभी अचानक आजाएँगे पिया इसलिए—
रात-रात भर दीप जलाया करता हूँ मैं।

(४)

उस अतीत की बात आज हो चुकी पुरानी,
जिसे कभी अभिमान बताया करता था मैं,
वह मेरी अनकही कहानी खत्म हो चुकी,
जिसे कभी वरदान बताया करता था मैं,
इसी तरह क्या धूप छांह के निश्चित क्रम-सा,
उलझन से उलझा चलता रहता है जीवन,
इसी तरह किंचित हरदम घेरे रहता है,
छोटे से जीवन को पल प्रति पल परिवर्तन,

कभी खिल उठे मधुवन का पतझार, इसलिए-
बीहड़ पर दृगधार बहाया करता हूं मैं,
कभी अचानक आजाएँगे पिया इसलिए-
रात-रात भर दीप जलाया करता हूं मैं।

मत करना अपमान प्यार का जग हँस देगा,
एक बार केवल पलभर को पिय आजाना,
और जिन्दगी के प्यासे, सूखे मरुथल पर-
एक बार केवल, सावन-घन बन छा जाना.

इस शरीर के मिट जाने का नहीं मुझे भय,
जीवन की यह ज्योति अमर तो हो जाएगी.
समझ सकेगी मूल्य स्नेह का भोली दुनिया,
अपने - आप प्रतीक्षित सांसें सो जाएँगी,

कभी सुलाओगे आकर निर्वेद हृदय को
इसलिए पीड़ा दुलराया करता हूं मैं।
कभी अचानक आजाएँगे पिया इसलिए-
रात-रात भर दीप जलाया करता हूं मैं,

—फरवरी १९५२

जीवन-प्रवाह

(१)

अविरत बहता जीवन - प्रवाह।
क्या सघन घाम ! क्या तरल छांह !

मधुरितु के वन के पात-पात,
पूनम की सुन्दर, सजल रात,
झिलमिल संध्या, जगमग प्रभात,
अधखिले मुकुल, मधु, सुरभिस्नात,

सबकी चिर-परिचित एक राह।
जिसकी गहराई, है अथाह।
अविरत बहता जीवन प्रवाह।
क्या सघन घाम ! क्या तरल छांह !

(२)

आते-जाते यह निशि - वासर।
बहता रहता, जीवन - निर्झर।

पाषाणों की जड़ता पंकिल,
धाराओं का मृदु - तन, रोमिल,
बहती जाती सरिता अविकल,
कल-कल, छल-छल, पल-पल, चंचल

बाधाओं का सन्मान, ठहर -
करती, बढ़ जाती. रुक, क्षण भर।
आते-जाते यह निशि-वासर।
बहता रहता जीवन - निर्झर।

(३)

फूलों में, कोमल कलियों में।
सुन्दर, इन मेघावलियों में।

सूखे-बिखरे निष्प्राण सुमन,
छितरी पंखुरिया, ध्वस्त, प्रमन,
घिर चले मेघ, उन्मुक्त गगन,
मचली बूँदें शीतल छन-छन,

आ गए प्राण, फिर अलियों में।
सोई-सी लहर-अवलियों में।

फूलों में कोमल कलियों में।
सुन्दर-इन मेघावलियों में।

(४)

सब में मुसकाता है जीवन।
अप्रतिहत श्वासों का कंपन।

सुनता हूँ रज-रज में धड़कन,
कण-कण से खेल रहा जीवन,
रग-रग में, जीवित, एक तपन,
सिहरन-पुलकन, कसकन, तड़पन,

जो आदि-अन्त से, ऊर्ध्व, अहन।
जीवन, कवि का है अभिनन्दन।

—अक्टूबर १९५२

रहस्यमय

—०—

इस अनंत के अन्तराल में कौन गा रहा गीत।

(१)

आलि गुन्जन, चातक की वाणी, कोकिल के मंजुल, मृदु स्वर में,
किसलय के निःस्वन मर्मर में, हिमगिरि के झरते निर्झर में,
बिहगों की मनहारी लय में, सरिता की चंचल-धारा में,
पीपी के चिर- अभिनंन्दन में, सुरभि पवन के द्रुत सस्वर में,
एक मधुर रव राग, गीत, गति, होती मुझे प्रतीत।
इस अनन्त के अन्तराल में कौन गा रहा गीत।

(२)

ऊषा के अधरों पर प्रति - दिन यह किसकी मुसकान,
किसका रोष मचल जाता है, संध्या का अवसान,
झिलमिल अगणित दीप व्योम के करते किसका मान-
रज-रज की यह बिरल रूप छवि किसका शुचि वरदान,
श्वास - श्वास में गूंज रहा है, प्रतिपल जो संगीत।
इस अनन्त के अन्तराल में कौन गा रहा गीत।

(३)

रवि-शशि, किसके नयन ! रात-दिन करते हैं जग का संरक्षण,
किसका स्नेह बूंद पावस की, धरती को देजाती जीवन,
यह रहस्यमय कौन सत्य शिव, सुन्दर, सोच रहा हूं-
जिसकी सुधि में झूम रहा है, रोम-रोम कण-कण प्रति-क्षण
बार-बार अभिनंदन कवि का है: अदृश्य, पुनीत।
इस अनंत के अन्तराल में कौन गारहा गीत

—अक्टूबर १९५२

उन्मत्त क्षण

—०—

यह सघन घनधार, पारावार यह घनघोर,
भावनाओं की धरा, सुधि चातकी का रोर,

यह पपीहे की विकल मनुहार, पी के बोल,
प्राण-वीणा के स्वरों में माधुरी, मद, घोल,

बह पड़ी, कब से थमी जाने सजल बरसात,
और गीली कर चली मेरी अँधेरी-रात,

दूर मेघों के तिमिरमय जाल में यह कौन?
कर रहा इंगित, बुलाता है मुझे, पर मौन,

तम घिरा है, इसलिए पाता नहीं पहचान,
किन्तु लगता है कि जैसे, है नहीं अनजान,

कामनाओं के गगन में खोजता आलोक,
शशि, नखत, राका छुपे जाने कहां किस लोक,

मेघ से कबरी सजाए, वह लुटाता प्यार,
एक झुरमुट बदलियों का कर रहा अभिसार,

किस सजीली साध का कैसा निठुर प्रतिकार,
आज तक हारा नहीं जो आज बैठा हार,

उड़ रहा मन, बादलों के साथ करता होड़,
भावनाएँ वायु की अंगड़ाइयों से जोड़,

शांत सागर में सम्हालो आ गया अब ज्वार,
हर लहर चट्टान से करने लगी है प्यार,

मथ रहा जल, बन चले हैं फेन उर-उद्गार,
आज मचला है युगों के बाद पारावार,

है नहीं पर प्यार का आधार ही साकार,
जीत लगती है मुझे तो जीतकर भी हार,

इन क्षणों को है न किंचित और कोई काम;
इसलिए लेने नहीं देते तनिक विश्राम,

एक क्षण मेरे लिए युग बन रहा-युग कल्प,
और सांसों की परिधि तो एक पल से अल्प,

मत छिपाओ चांद, फैला कर सघन घन जाल,
क्योंकि लहरों ने सजाई है युगों तक माल,

आज पहनालें नयन की प्यालियों को ढोल,
एक क्षण सम्पूर्ण जीवन का चिरन्तन मोल।

जनवरी १९५२--

अपनी बात

मुझ को अपनी दुनिया पर विश्वास नहीं है।

(१)

दुनिया रूठे, इसकी तो परवाह नहीं है,
सन्मानों के ढेरों की भी चाह नहीं है,
चलते चलते थक जाऊं मैं, रुक जाऊ मैं,
इस दुनिया में ऐसी कोई राह नहीं है,
पर समवेदन के आंसू भी जिससे रूठें-
उस जीवन में जीवन भर फिर हास नहीं है,
मुझ को अपनी दुनिया पर विश्वास नहीं है,

(२)

वैसे तो सब को ही अपना कहता हूँ मैं,
सभी किनारों से टकराकर बहता हूं मैं,
मुझे हँसाने तुम भी अपना कह देते हो,
यह धोखा भी, जान बूझकर सहता हूं मैं,
जिस पीड़ा को पर मैंने गीतो में गाया -
उस. सब कुछ का कुछ भी मेरे पास नहीं है।
मुझ को अपनी दुनिया पर विश्वास नहीं है।

(३)

मेरे नभ का चांद हमेशा मुसकाता है-
सपनों में काली रातों पर छा जाता है-
अन्वर से पर कभी नहीं पूछा उसने-
तेरा भी पागल, मुझसे कोई नाता है -
इतनी दूरी भी कभी कभी खल जाती है
पथ में ही जब, मंजिल की कोई साँस नहीं है
मुझको अपनी दुनिया पर विश्वास नहीं है।

(४)

दुनिया मेरे भाव बहाने बतलाती है,
आहों को अलमस्त तराने बतलाती है,
मुझे घटाओं के घिरने का सोच नहीं है,
इन आँखों में गीली बदली इतराती है,
सावन के घन गर्जन धीरे कह जाते हैं,
इस दुनिया में कभी कहीं मधुमास नहीं है,
मुझ को अपनी दुनिया पर विश्वास नहीं है।

(५)

विश्वास नहीं आशा थोड़ी-सी मन में,
पतझर होगा, कुछ तो होगा मधुवन में—
मंजिल मुझ से बह ही जाएगी मीलों—
मझधार सही लहरों के हर लघुकण में—
तुम गरल दे रहे हो अंजलि में साथी—
इससे बुझ जाए ऐसी सस्ती प्यास नहीं है,
मुझ को अपनी दुनिया पर विश्वास नहीं है।

—सन् १९५१

ग्राम-युवति

भोले शिशु का कौतूहल है उन आंखों में,
नहीं वासना, अपितु वहां ममता पलती है,
वहां त्याग अनुराग, सत्य, तप, श्रम पलता है,
उन नयनों में जीवन का समता पलता है,
द्वेष नहीं है प्यार छलकता उन आंखों से,
रोष नहीं, है शील बरसता उन आंखों से,
माया की, वैभव की थोथी चमक नहीं है,
समवेदनमय तेज झलकता उन आंखों से,
सस्मित अधर, हँसी जिनकी विहगों का जीवन,
बिखरे केश, ग्रामके सूखे खेतों के लहराते सावन,
उन्नत - भाल श्वेद जिस पर पावस कि बूंदें,
अरुण कपाल सुहाग धरा का जिनका कंपन,
मिलित पलक बरौनी सुन्दर पुतली चंचल,
लाज भरे हिल-हिल जाते चिकने प्रवालदल,
स्वस्थ, श्लील, सन्तोषी समरसता जीवन की,
तन, मन, वाणी कर्म सभी कुछ संयत प्रतिपल,
श्रद्धे अभिनन्दन, तुम हो नारी की पूरक;
भाव, लेखनी, मन, वाणी सबकुछ नतमस्तक।

—अक्टूबर १९५२

वर्तमान से भविष्य की ओर

—०—

छटपटाते हैं धरा के प्राण,
क्योंकि पाना चाहते हैं त्राण,
त्राण कैसा, क्या हुआ है आज,
आज, बिखरा है धरा का साज,
साज, कितना हो गया है छिन्न
एक मानव, दूसरे से भिन्न
भिन्न, जीवन से जवानी आज
भिन्न है युग की कहानी आज
युग, कि जो है जिन्दगी से दूर
युग, कि जो है आज थककर चूर
चेतना जड़ हो गई है आज
सत्य पर टूटी कहाँ से गाज
द्वेष जीवन को हुआ अनिवार्य
स्वार्थ जीवन के लिए अनिवार्य
खो गया जाने कहाँ पर प्यार
प्यार का अपमान, है प्रतिकार
आज वैभव के लिए सन्मान
बेच देता बेधड़क इन्सान
हो न क्यों कवि के हृदय को खेद
आंख से बहने लगा प्रस्वेद
है नहीं पानी नयन के पास
जिंदगी को जिंदगी उपहास
लाज देकर भी न आती लाज
और क्या है शेष होना आज

सामने तादात्म्य का शव जा रहा
हाय! जीवनसाम्य का शव जा रहा
आज ममता की धधकती है चिता
आम समता की धधकती है चिता
धर्म की अर्थी चली है नग्न
कर्म का प्रासाद टूटा, भग्न
आज प्यासा है यहाँ इन्सान
आज भूखा है स्वयं भगवान
यह करोड़ों वर्ष का उत्थान
आज धरती बन चली श्मशान
जिस धराको नयन-जलसे सींच
रक्त पानी कर सदैव उलीच
उर्वरा करता रहा इन्सान
वह बना भूका स्वयं अपमान
जा रहा किस लक्ष को संसार
कौनसा धन है कि जिससे प्यार
कौन वैभव आज जिस पर फूल
यह स्वयं को ही गया है भूल
आज तो विश्वास है न विवेक
घिर चली है एक काली रेख
क्योंकि मन से बुद्धि है अब दूर
शक्ति से मन, बुद्धि दानों दूर

जब चरमता पर पहुंचते पाप
और होता भी न पश्चात्ताप
जग दनुज से देव जाते हार
टूट जाते सत्य के पतवार
जबकि मिथ्या की यहां हो जीत
धार सुरसरि बह चले विपरीत
जबकि माया से मनुज को मोह
तब प्रकृति करती स्वयं विद्रोह
धर्म का होता जहाँ पर ह्रास
दानवीय कुवृत्तियों का वास

सामने तादात्म्य का शव जा रहा
हाय! जीवनसाम्य का शव जा रहा
आज ममता की धधकती है चिता
आम समता की धधकती है चिता
धर्म की अर्थी चली है नग्न
कर्म का प्रासाद टूटा, भग्न
आज प्यासा है यहाँ इन्सान
आज भूखा है स्वयं भगवान
यह करोड़ों वर्ष का उत्थान
आज धरती बन चली श्मशान
जिस धराको नयन-जलसे सींच
रक्त पानी कर सदैव उलीच
उर्वरा करता रहा इन्सान
वह बना भूका स्वयं अपमान
जा रहा किस लक्ष को संसार
कौनसा धन है कि जिससे प्यार
कौन वैभव आज जिस पर फूल
यह स्वयं को ही गया है भूल
आज तो विश्वास है न विवेक
घिर चली है एक काली रेख
क्योंकि मन से बुद्धि है अब दूर
शक्ति से मन, बुद्धि दानों दूर

जब चरमता पर पहुंचते पाप
और होता भी न पश्चात्ताप
जग दनुज से देव जाते हार
टूट जाते सत्य के पतवार
जबकि मिथ्या की यहां हो जीत
धार सुरसरि बह चले विपरीत
जबकि माया से मनुज को मोह
तब प्रकृति करती स्वयं विद्रोह
धर्म का होता जहाँ पर ह्रास
दानवीय कुवृत्तियों का वास

सत्य की हलो जली उस काल
धर्म की होली जली उस काल
देव, दानव थे विलासी घोर
था चतुर्दिक वासना का रोर
छटपटाई थी धरा संतप्त
देव, भौतिक साधना में व्यस्त
सब विलासी कौन किसका मीत
हार देवों की दनुज की जीत
सत्य को लेकिन सनातन ज्ञान
आत्मा के गीत को पहचान
बिजलियाँ कड़कीं, जगे घननाद
एक काली रेख, तीव्र विशाद
सत्य का विह्वल प्रलय-उद्‌घोष
तीक्षण उल्कापात बरसे रोष
दीघतम होने लगा हिमपात
आँधियों की सरसराहट साथ
सात सागर मे सतेज उफान
सजचला हर ओर था श्मशान
वृक्ष टूटे पत्तियाँ भयत्रस्त
चीखते पशु श्रग ढह-ढह ध्वस्त
होगया सब नष्ट मनु थे शेष,
एक श्रद्धा थी हृदय में लेश,
एक दृढ़ता और निश्छल बुद्धि,
पूर्ण पावन भाव'नवल समृद्धि,
और तब अब मानके आंसू बहा
रातने ली थी विदाई सिर झुका
होगया था एकदिन पंकिल पुरातन
झूठ का था सत्य चरणोंपर समर्पण
एक नव-अनुराग ले धरती जगी
एक नव निर्माण ले अंबर जगा
एक नव-दिनमान ले दुनियां जगी
एक रुचिर-वितानले कणकण जगा
और तबसे आजतक दुनिया चली

आज अणु - युग,आजा यह संहार का युग
आज है यह सत्य के प्रतिकार का युग
आज है यह आत्मा की हार को युग।
यह विषमता रोग अत्याचार का युग,
यह हृदय का युग नहीं, आसि - धार का युग
यह प्रलय की बानगी, आसार का युग,

आज तुम संहार को संघर्ष कहते
आत्मा की हार को उत्कर्ष कहते
सत्य के सन्मान,मिथ्या त्राणको
संघर्ष होता है सतत उत्थान को
प्राण की परिपूर्णता को मान का
शील,समवेदन,सुरुचि निर्माण को
द्वेष से लड़ना यहीं संघर्ष है
सत्य-संरक्षण यहीं संघर्ष है
धर्म-प्रतिपादन, यही संघर्ष है
आत्म-परिवर्धन, यही संघर्ष है
घृणा छूटे, प्यार जन-जन में जगे
जीव का सत्कार जन-जन में जगे
सृष्टि-संशोधन, शुचि भावना हो
देव,मानव,विश्व,अलका,कामनाहो
अब प्रथम उत्सर्ग क्षमता चाहिए
स्वार्थ कब, परमार्थ क्षमता चाहिए
एक सद-आदर्श ही संघर्ष है
क्लीवता, पशुता नहीं संघर्ष है
आज तो संघर्ष का अपमान है
मानवी उत्कर्ष का अपमान है
स्वार्थ का युग,आज पार्थिवता सजग
शक्ति युग, आज दानवता सजग
प्यारका अपमान कलुषित वासना है
एक सत्ता की अपावन भावना है

इन करोड़ों साल के एकत्र भ्रम को
क्याकहूँ मैंभी तुम्हारे भ्रष्टभ्रमको
कर रहे व्यय सृष्टि के संहार पर
कर रहे व्यय सत्य के प्रतिकार पर
शक्ति का अतिरेक तो अभिशाप है
बुद्धि का अतिरेक भी अभिशापहै
आज सम्हला यदि नहीं संसार
आज बदला यदि नहीं संसार
हो न जाए आज पुनरावृत्ति
जग न जाए पुनः पाशववृत्ति
एक परिवर्तन सदा साकार
कूल है, तो है यहाँ मँझधार
यदि बदलना चाहते हो आज
यदि सम्हलना चाहते हो आज
तो सम्हालो त्याग की पतवार
और सीखो सत्य का सत्कार
प्राणको, मन को,सु-संयत बुद्धिको
कर समान्वित भावना की शुद्धिको
शक्ति का उपयोग हो निर्माण को
एक समरसता मिले इन्सान को
स्वस्थ यौवनऔर पावन भावनाहो
सृष्टि के कल्याण में रत साधनाहो
शील, समता से जिएँ सब जीव
स्नेह, जन-प्रासाद की हो नींव
जाग जाओ, आगया वह काल
अब सजालो प्यार की वरमाल
पुरुष, नारी, सब शपथ ले आज
अब सजाएँगे धरा का साज
आज गाओ एक स्वर में गीत
ले नया विश्वास, नूतन प्रीत
है यही अभिलाष कवि की आज
स्वर्ग सा, देखे धरा का साज

एक यह केवल निवेदन,
आज हो परिपूर्ण कण कण,
आज हो आदर्श जन जन,
दीप नूतन ! ज्योति नूतन।
कर्म संयत ! प्यार नूतन।
एक सद व्यवहार पावन !

ॐ नमः शिवाय !!!